तेवरीपक्ष

-22

तेवरी-विधा को समर्पित प्रस्तुति

वर्ष-29, अंक-3, जु.-सित.-2012, मूल्य- 15 रु. वार्षिक-50 रु.

(तेवरी)

निश्चल

है चुनावी आजकल मौसम गुरू
झूठ का फिर से भरो तुम दम गुरू।

कसमें वादे काम यदि आएँ नहीं
आजमाओ तब दनादन बम गुरू।

वरण कर लो सहज सब मक्कारियाँ।
झूठ में ही आजकल दम गुरू।

कीच या दलदल की है चिंता किसे
है कमल खिलने का ये मौसम गुरू।

चासनी लिपटी जुबाँ लेकर तू चल
छल भरी बातों में केवल रम गुरू।

रोटियाँ चटनी से खा लेकिन बता
है नहीं हम भी किसी से कम गुरू।

बोतलों के ढक्कनों को खोलकर
तू मिटा अब ज़िंदगी का ग़म गुरू।

जेब काटो या किसी को लूट लो
कुछ नहीं होता यहाँ अधरम गुरू।

बात 'निश्चल' सौ टके की है यही
पुज रहे हैं सिर्फ अधमाधम गुरू।

'शारदायतन' पंचनगरी, सासनी गेट
अलीगढ़-202001

संस्थापक-
लोककवि स्व. श्रीरामचरन गुप्त
परामर्श-
डॉ. गोपाल बाबू शर्मा
दर्शन बेज़ार, अशोक कुमार यादव
संपादक- रमेशराज

Scanned by CamScanner

काव्यकृति-'तोड़ पत्थरों को भागीरथ' लोकार्पित

तेवरी-विधा के चर्चित कवि दर्शन 'बेज़ार' के कविता संग्रह 'तोड़ पत्थरों को भागीरथ' का लोकार्पण काकोरी काण्ड के अमर शहीद राजेन्द्र-लाहिड़ी के बलिदान दिवस १७ दिसम्बर २०११ को यूथ हॉस्टल सभागार आगरा में कवि के शिक्षक गुरुओं-डॉ. नारायण सिंह दुबे, डॉ. सन्त प्रकाश गुप्ता, डॉ. एच.सी.गुप्ता, प्रो. डी.आनन्द राव, प्रो. एस. भगवन्त राव और प्रो. देवेन्द्र स्वरूप सक्सेना के कर-कमलों द्वारा किया गया। सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. राजेन्द्र मिलन द्वारा सरस्वती वंदना किए जाने के पश्चात् कवि ने अपने सभी शिक्षकों से मिले आशीर्वाद तथा मार्गदर्शन हेतु उन्हें धन्यवाद प्रेषित करने के पश्चात् संग्रह से कुछ रचनाओं का पाठ किया तथा अपने काव्य लेखन पर प्रकाश डाला। वरिष्ठ नागरिक समिति के संस्थापक राजेन्द्र प्रकाश ने बताया कि कवि ने प्राइमरी की शिक्षा उन्हीं अध्यापक से पाई है जिन्होंने द्वारका प्रसाद माहेश्वरी को भी कभी पढ़ाया था। डॉ. भगतवती प्रसाद शर्मा डी. लिट (डी. ई. आई.) ने कवि को राष्ट्रोन्मुखी किन्तु बेलाग रचनाकार बताते हुए उसके व्यंगात्मक तेवरों पर प्रकाश डाला। टूण्डला फिरोजाबाद के विवेकानन्द केन्द्र के संचालक चन्द्रमोहन ने इस संग्रह को विवेकानन्द जी के 'उठो, जागो, लक्ष्य प्राप्त करो' का संवाहक बताया। प्रख्यात साहित्यकार डॉ. शेषपाल सिंह 'शेष' ने कवि को सकारात्मक सोच का प्रगति द्योतक बतलाया। कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. नारायणसिंह दुबे ने अपने प्रिय शिष्य बेज़ार को लगभग पचास वर्ष बाद उसी पुराने अन्दाज में प्रभावशाली रचना करने हेतु पुनः आशीर्वाद दिया।

कार्यक्रम के दूसरे चरण में डा. स्वामी प्यारी कौड़ा की अध्यक्षता में काव्य गोष्ठी हुई जिसमें डा.कमला सैनी, डॉ. शशि तनेजा, श्रुति सिन्हा, डॉ. शेष, योगेंद्र योगी, सुशील सरित, दीपक श्रीवास्तव, दयाल सरन कौशिक आदि ने भाग लेकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। अन्त में प्रकाशक शब्द प्रकाश कुलश्रेष्ठ तथा मक्खन लाल कुलश्रेष्ठ पुस्तकालय के प्रबन्धक प्रमोद कुमार कौशिक तथा व्यवस्थापक जगदीश प्रसाद झा ने सभी अतिथियों का आभार व्यक्त किया।

-प्रमोद कुमार कौशिक

दो तेवरियाँ

रमेश प्रसून

गिरने को तैयार है शायद।
वह कोई दीवार है शायद।
सब उससे बचकर चलते हैं
लगता है, लाचार है शायद।
हरदम हँसता ही रहता है
दर्दों की भरमार है शायद।
टूटे सपनों के आँगन में
आँसू का त्योहार है शायद।
जिसको दवा नहीं लगती कुछ
वह ऐसा बीमार है शायद।
जग से जीता घर में हारा
ये ही उसकी हार है शायद।
चेहरे पर ख़बरें ही ख़बरें
शहर नहीं अख़बार है शायद।

-4/75, सिविल लाइन्स, टेलीफोन केन्द्र के पीछे, बुलंदशहर (उ.प्र.)

उर्मिला श्रीवास्तव 'उर्मि'

नभ में घना कुहासा है।
निर्धन भूखा-प्यासा है।
अब तक उसको हर कोई
देता रहा दिलासा है।
उसके हिस्से खुशिया कम
उसका भाग्य जरा-सा है।
हर पल उसके मन में दुःख-
आया अच्छा-खासा है।
उसके ग़म से खेले सब
उसका हाल ठगा-सा है।
लाख प्रलोभन उसे मिले
डिगा न, दिखा अड़ा-सा है।
'उर्मि' यहाँ तो प्रचलित बस
पैसे का जल्वा-सा है।

-फ्लैट-301, ब्लॉक-19, स्पार्कल सनसिटी सरजापुर सिंग रोड, बंलौर-560102

Scanned by CamScanner

'ग़ज़ल' बनी अब 'गजल'

कुछ मौलिक प्रयोगों और विलक्षण कथन-संयोगों के कारण ग़ज़ल को लेकर दुष्यंत कुमार का नाम हिन्दी साहित्य में क्या उछला कि हिन्दी के अधिकतर गीतकार, कहानीकार, लघुकथाकार, उपन्यासकार, चुटकुलेबाज, मुक्तछंद के मकरंद यहां तक कि आलोचक और समीक्षक अपने मूल सृजन को छोड़कर खुद को दुष्यंत जैसा ग़ज़लकार बनाने और ग़ज़ल को भुनाने में ऐसे जुट गये, जैसे महाभोज के लिए गिद्ध जुटते हैं।

ग़ज़ल के शास्त्रीय सरोकारों, उसके मूल अर्थ को न समझने वाले विद्वानों ने ग़ज़लपन की सारी विशेषताओं को व्यर्थ सिद्ध ही नहीं किया बल्कि ग़ज़ल के नियमों से छूट की लूट को तैयार हुए ये रँगरूट ग़ज़ल-सृजन के नाम पर ग़ज़ल का कीमा कूटने लगे और इस कुटी-पिसी-मसली ग़ज़ल को इन्होंने 'हिन्दी ग़ज़ल' कहा।

'ग़ज़ल' को 'हिन्दी ग़ज़ल' बनाने वालों ने तर्क दिये कि ''ये फैलुन-फैलुन' क्या होता है? जो चीज हमारे व्याकरण के अनुकूल है ही नहीं, उस पर व्यर्थ की माथापच्ची क्यों करें, आओ ग़ज़ल में हिंदी-छंदों का ओज भरें।'' कोई बोला-''ग़ज़ल कहने के लिये 'मतला-मक्ता' के प्रयोग हमारी दृष्टि में एक रोग के सूचक हैं, इसलिये ग़ज़ल से 'मक्ता-मतला' हटाओ और इस तरह एक स्वस्थ हिन्दी ग़ज़ल बनाओ।'' किसी ने फरमाया-''ग़ज़ल पर उर्दू की छाया है। चूंकि हमने इस विदेशी विधा को हिन्दी में अपनाया है अतः हिन्दी के तत्सम शब्दों का प्रयोग करो। हिन्दी ग़ज़ल लिखनी है तो अरबी-फारसी शब्दावली की हर कली तोड़नी ही पड़ेगी। ग़ज़ल हमें भारतीय संस्कारों से जोड़नी ही पड़ेगी।'' किसी ने सुझाया-''ग़ज़ल अगर गीत के निकट आती है तो आने दो।'' किसी ने कहा-''एक 'मुसलसल ग़ज़ल' भी तो होती है, जो ग़ज़ल की ही पोती है। हम हिन्दी वाले इसी 'रोती-सी पोती ग़ज़ल' के रूप को अपनाकर हिन्दी साहित्य को महिमामंडित करेंगे।'' किसी ने कहा-''ग़ज़ल' में हम 'इक काफिया ग़ज़ल' का रूप अपनाएंगे और ईलू-ईलू गायेंगे। ग़जल, ग़ज़ल के मापदंडों पर खरी उतरे, न उतरे इसे 'हिन्दी ग़ज़ल' बताएंगे।''

ये बातें तब की हैं, जब 'गजल गरिमा' नामक पत्रिका का आगमन हिन्दी में नहीं हुआ था। इस पत्रिका के माध्यम से अब हिन्दी में ग़ज़ल के नाम पर कई और अज़ूब हो गये हैं। ग़ज़ल के नीचे के दो अधोबिन्दु अर्थात् नुक्ते कहीं खो गये हैं। ग़ज़ल की नुक्तेविहीन इस नंगी शक्ल पर हिन्दी के 'ग़ज़लकार' ही नहीं, 'गजलकार' भी रीझ रहे हैं और उर्दू वालों पर इस प्रकार खीज रहे हैं- ''उर्दू गजलविद यदि हिन्दी गजलकार को खारिज करते हैं तो करने दीजिए। हम क्यों अपने सृजन पर उनका ठप्पा लगवाना चाहते हैं? उनके तो बाँट ही अलग हैं। वे अपने बाँटों से हमें क्या तोलेंगे।'' (डॉ. सेन, गजल गरिमा, जन-मार्च-१२)

'ओढ़ लयी लोई तौ का करैगौ कोई' या' मान न मान मैं तेरा मेहमान' जैसी गर्वोक्ति केवल निर्लज्जता की ही परिचायक नहीं है बल्कि 'ग़ज़ल की समझ' की दीनता को भी प्रकट करती है। 'ग़ज़ल', ग़ और ज़ के नीचे लगे नुक्तों के साथ ही अपने शाब्दिक अर्थ को उजागर करने में सामर्थ्यवान है। इन नुक्तों

Scanned by CamScanner

को हटा देने के बाद उसका शरीर ही नहीं, उसकी आत्मा भी परलोकवासी हो जाती है। इस खतरे को भांपते हुए ग़ज़लकार मधुर नज्मी चेतावनी-भरे स्वर में कहते हैं-'' ग़ज़ल को अति भाषायी उत्साह में 'गजल' बनाया जाना कुछ-कुछ वैधानिक अपराध करने जैसा महसूस होता है-- अधिसंख्य गीतकार नवगीत॰का अपना खेमा छोड़कर 'हिन्दीग़ज़ल' को 'नागरी गजल' बनाने पर तुले हुए हैं। हिन्दी ग़ज़ल नाम न जाने क्यों अब उन्हें नहीं खप रहा है। एक मुहिम, एक साज़िश ग़ज़ल से मुखातिब है। अच्छा है, फिलहाल हिन्दी ग़ज़ल में कोई खलीफा नहीं है।'' (गजल गरिमा-३, पृ.-४)॥ श्री विपिन सुनेजा शायक ने चेताया-''ग़ज़ल (नुक्ता सहित) शब्द के नीचे नुक्ते न लगे देखकर निराशा हुई।... 'गजल' कहने का हठ न करें। यदि ऐसा ही चलता रहा तो आने वाले कवि इसे 'गजलिया' बनाकर रख देंगे।'' (गजल गरिमा-३, पृ.३१)॥ पद्मश्री गोपालदास 'नीरज' ने 'गजल' शब्द पर चुटकी लेते हुए कहा-'' आजकल ग़ज़ल पर रोज एक नयी पत्रिका प्राप्त हो रही है। लगता है सभी गीतकार और पत्रकार ग़ज़ल के पीछे पड़ गये हैं, इसलिए ग़ज़ल के नाम पर बहुत-कुछ कूड़ा-करकट इकट्ठा हो रहा है। (गजल गरिमा-३ पृ.२९)॥ श्री मधुसूदन साहा ने इन नव गजलकारों को सुझाव दिया-''गजल' शब्द के नीचे नुक्ता दें, नहीं तो ग़ज़लधर्मी लोग आपकी नुक्ताचीनी करेंगे।''

ग़ज़ल को गजल बनाकर इठलाती-मदमाती, मस्ताती जमात को ऐसे सुझाव बेकार और बेजान इसलिए लगे क्योंकि इनका मानना है-''दुन्या (दुनिया), खतूत (खतों), आवारः (आवारा), परिन्दः (परिन्दा), एहसास (अहसास), मज्हब (मजहब) आदि ऐसे कितने ही शब्द हैं जिन्हें मूल रूप में हिन्दी भाषा के स्वाभावनुसार लिखा व बोला जाता है। आपका ध्यान शायद इस तथ्य की ओर नहीं गया कि किसी भी उर्दू शब्द के नीचे नुक्ता की प्रयुक्ति नहीं की गयी है, क्यों? क्योंकि हिन्दी भाषा में उसका अर्थ नहीं बदलता। ...अच्छा हो आप 'हिन्दी गजल' को हिंदी या हिन्दी के निकट रहने दें। (भानुमित्र, सं-गजल गरिमा-३, पृ.३०)

भानुमित्रजी की उपरोक्त टिप्पणी से उनके अज्ञानपन की जानकारी तो इसी से मिल जाती है कि वे जिन शब्दों को 'उर्दू-शब्द' कहते हैं वे उर्दू के न होकर या तो अरबी के हैं या फारसी के। चूँकि उर्दू कोई भाषा है ही नहीं, बल्कि हिन्दी की खड़ी बोली का एक रूप है, जिसमें एक भी उर्दू का शब्द नहीं है। सोचने की बात यह भी है कि कथित उर्दू में सर्वनाम, कालसूचक सहायक क्रियाएँ, मुख्य क्रियाएँ हिन्दी की हैं, अर्थात् व्याकरण हिन्दी का और कुछ शब्द अरबी-फारसी के, लिपि भी उसकी अपनी नहीं। ऐसी बोली को भाषा कहना ठीक उसी तरह है जैसे लोग सम्प्रदाय को धर्म समझते हैं। यह समझ अपरिपक्व, अपूर्ण और अज्ञानता से भरी है। इसी अज्ञानता के सहारे चलते हुए श्री भानुमित्र हिन्दी भाषा के स्वभावानुसार अरबी-फारसी के शब्दों को पता नहीं कैसे हिन्दी में लिख या बोल लेते हैं, वह भी उनके मूल रूप में? जहाँ तक कथित उर्दू-शब्दों के नीचे नुक्ता-प्रयुक्ति का सवाल है तो उन्होंने अपनी टिप्पणी में अरबी-फारसी के ऐसे शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जो तत्सम से तद्भव रूप में प्रयुक्त होने पर अर्थ का अनर्थ नहीं करते। उन्होंने 'दुन्या' से 'दुनिया', 'खतूत' से 'खतों', 'नस्ल' से 'नसल', 'फस्ल' से 'फसल', 'इंतिजार' से 'इन्तजार', 'शम्अ' से 'शमा', 'चराग' से 'चिराग', 'मस्अलः' से 'मामला', 'एहसास' से 'अहसास',

Scanned by CamScanner

'मज़्हब' से 'मजहब' आदि शब्दों के आम प्रयोग में प्रचलित रूपों के उदाहरणों में बड़ी ही चालाकी बरती है ताकि नुक्ते के प्रयोग को निरर्थक सिद्ध किया जा सके। नुक्ते की सार्थकता को सिद्ध करने वाले अगर कुछ शब्द उन्होंने अपने उदाहरणों में ले लिये होते तो उनकी उपरोक्त टिप्पणी पूरी तरह धराशायी हो जाती। ध्यान देने की बात यह कि 'ज़माना' शब्द से यदि प्रयुक्त अधोबिन्दु हटा दिया जाये तो इसका अर्थ 'संसार' के स्थान पर किसी 'वस्तु को स्थिर करना या स्थापित करना' हो जाता है। 'ख़ाना' शब्द को नुक्ताविहीन कर देने पर यह शब्द 'घर' के स्थान पर 'भोजन' को ध्वनित करने लगता है। 'ज़ीना' शब्द से अधोबिन्दु हटने के बाद यह शब्द 'सीढ़ी' का अर्थ खोकर 'जीवन' का पर्याय बन जाता है। जबकि तर्क की बात यह है कि नुक्तायुक्त 'तर्क़' 'त्यागने' का प्रतीक है। क्या इसी तरह राज़ को राज कहना ठीक है। जो लोग फ़न (कला) और 'फन' (साँप की फैली हुई मुखाकृति) के भेद से अन्जान हैं, वही 'ग़ज़ल' को 'गजल' बना रहे हैं और अपने इस कर्म को सुकर्म बता रहे हैं।

शब्द 'ज़माना' और 'जमाना', 'राज और 'राज़' 'खाना और ख़ाना' 'गुल' और 'ग़ुल', 'ज़ीना' और 'जीना' आदि में भेद मिटाकर हिन्दी या उसके साहित्य को समृद्धिशाली, वैभवपूर्ण और दिव्य बनाने वाले ऐसे हिन्दी गजलकार भाषा के बिगड़े रूप पर सवार होकर अपनी नैया ठीक उसी तरह पार लगाना चाहते हैं जैसे अल्पशिक्षित आम आदमी 'आशीर्वाद' को 'आर्शीवाद' या आर्शिबाद, 'फालतू' को 'बेफालतू' 'शृंगार' को 'श्रृंगार' 'कृपया' को 'कृप्या', 'अन्यायी' को 'अन्जायी', 'हल्दी' को 'हद्दी', 'मिर्च' को 'मिच्च', 'जाती है' को 'जाति है' आदि-आदि लिख-बोलकर संदर्भ के अनुसार अर्थ भी ग्रहण करता है और अपनी बात भी कहता है। क्या भाषा का यह शाब्दिक रूप सही है? आम आदमी ने क्षेत्र विशेष के आधार पर अपनी सुविधानुसार शब्दों की जो तोड़-मरोड़ की है, यह उसके लिये सरल और भली है किंतु क्या इसी रूप को मानक रूप मानकर पाठशालाओं में पढ़ाया जाना चाहिए? क्या यही रूप 'हिन्दी गजल' में नहीं आना चाहिए? बहुत सम्भव है आगे चलकर यह हिन्दी गजलकार इस रूप पर भी गम्भीरता से विचार करें और हिन्दी गजल में नया ओज भरें।

जब अज्ञानता, अतिज्ञान का दम्भ भरती है तो भाषा के पेट में एक छुरी उतरती है। व्याकरण में एक नहीं अनेक छेद करती है। साझा तहजीब का गला रेतती है। उड़ान भरते शब्दों के पंख कतरती है। इस तरह शब्दों की अर्थवत्ता मरती है। भाषा के बीच उसकी अर्थ की लय सड़ती है। दुनिया ऐसी बातों को सुनने के बजाय नाक पर रूमाल रखकर तेजी के साथ आगे बढ़ती है। ऐसी बातों से चिढ़ती है। किन्तु ऐसे वातावरण से अन्जान कुछ महान विद्वान अपने व्याख्यान फिर भी जारी रखते हैं। ग़ज़ल भी अब ऐसे हिन्दी के पंडितों के कारण छूत के रोग की शिकार होती जा रही है। ये नासमझ चिकित्सक हैं कि इसमें लगातार सुधार की बातें कर रहे हैं। ग़ज़ल के खोखले शरीर में घास-फूँस भर रहे हैं।

नुक्ते का शब्द के साथ सही प्रयोग शब्द को सार्थकता प्रदान करता है, लेकिन मति के मारे हमारे हिन्दी गजलकार हमें यह समझा रहे है-''हिन्दी की वर्णमाला में नुक्ता कहां है? हम वाक्य के संदर्भ में इसका अर्थ समझ लेते हैं। हमारे लिये तो 'राज़' और 'राज' समान हैं। हम वाक्य के संदर्भ में इसका अर्थ समझ लेते हैं। 'कल' आने वाला है या बीता हुआ है, इसे हम संदर्भ के अनुसार समझ लेते हैं। गजल अगर हिन्दुस्तानी है तो इसकी शब्दावली भी

Scanned by CamScanner

हिन्दुस्तानी ही होनी चाहिए।... हिन्दी गजल के लिये जो शब्दावली ईजाद हुई है, वह भले ही अभी प्राथमिक पाठशालाओं में न पढ़ायी जाती हो, लेकिन हिन्दीगजल के लिये उपयुक्त भाषा यही है।'' (डॉ. माया, गजल गरिमा, जन-मार्च-१२, पृ.१२)

जिनके लिये 'राज' और 'राज़' में कोई फर्क नहीं है, ऐसे विद्वानों का ग़ज़ल से नुक्ते हटाना और उसे 'गजल' बनाना ठीक उसी तरह है जैसे रॉड और बल्ब को दीपक बताना। इन अति ज्ञानवानों को कौन समझाये कि दो बार 'हा' लिख देने को 'दोहा' कहा जा सकता है, लेकिन इसमें दोहा जैसे क्या होता है? लघुकथा और लघुकहानी, नाटक और एकांकी, कविता और काव्य का फर्क ऐसे लोगों की शायद ही समझ में आये। वाक्य के संदर्भ के अनुसार शब्द के अर्थ को समझ लेने का दम्भ भरने वाले ये हिन्दी साहित्य के नये स्तम्भ अपने तथ्यों का चाहे जैसे कर लें आरम्भ और चाहे जैसे उसका अंत, किन्तु रहेगा यही सवाल जीवंत कि-हिन्दी गजल के लिये ऐसी कौन-सी शब्दावली ईजाद की जा रही है, जो पाठशालाओं में नहीं पढ़ायी जा रही है। प्राथमिक पाठशालाओं में तो आज अंग्रेजी का बोलबाला है। यह विद्वान बतायें, 'हिन्दी गजल' की उपयुक्त भाषा (अगर ईजाद की है) को ये कौन-सी पाठशालाओं में ले जायेंगे, जहाँ ये बतायेंगे कि हिन्दी में ग़ज़ल नहीं, 'गजल' उच्चारण सही है। क्या इसके लिये इस नयी 'गजल' की पाठशालाएँ खुलवायेंगे?

गजल (ग़ज़ल नहीं) अगर हिन्दुस्तानी है तो क्या हिन्दुस्तान में मुसलमान, सिख, ईसाई नहीं रहते? क्या हिन्दुस्तान सिर्फ हिन्दुओं का देश है? ये हिन्दुस्तान का कैसा परिवेश है जिसमें बाल ठाकरे, राज ठाकरे बनकर रहना साहित्यकार की भी मजबूरी बनता जा रहा है। इस नये 'गजल के बम' से साहित्य की साझा विरासत को तो ध्वस्त किया जा सकता है लेकिन पूरे हिन्दुस्तान को एक सूत्र में पिरोने का काम नहीं किया जा सकता है। अतः बात सिर्फ ग़ज़ल से नुक्ते नोचकर फैंकने की नहीं है, यह तो अलगाव के घाव देकर एक अलग चूल्हा बनाकर अपनी अलग रोटी सेंकने की है।

अगर 'कल' किसी राजा का नाम हो और श्रोता इस नाम को न जानता हो और कोई कवि उसके समक्ष केवल यह कविता की पंक्ति पढ़े कि 'कल राजा को निश्चित मारूँ कसम श्याम ने खायी है।' इस पंक्ति को सुनने के बाद क्या 'गजल' के ऐसे विद्वान संदर्भ के अनुसार 'कल' का वास्तविक अर्थ समझ लेंगे? अगर पुराना मिथक नायक 'अलादीन' चराग़ रगड़कर 'जिन' को प्रकट कराने के बाद यह कहे कि-''बत्ती को गुल कर दो।'' सही अर्थ को न समझ पाने वाला 'जिन' ऐसे में यदि बत्ती को गुल अर्थात् फूल बना दे तो संदर्भ के अनुसार यह शब्दार्थ की सही पकड़ होगी? क्या हातिमताई को बत्ती बुझवाने के लिये जिन से अपरोक्त वाक्य ऐसे नहीं कहना चाहिए कि-'' बत्ती को ग़ुल कर दो'। वाक्य-'ज़िन्दगी भर को जमाना सीख ले' से क्या सही संदर्भ की समझ सही अर्थ को स्पष्ट करती है। 'जमाना' शब्द यहाँ जमाने (स्थापित करने) या ज़माने (संसार) में से किस संदर्भ में ग्रहण किया जायेगा? क्या यह संदेह या दुहरी आशंका या द्विविधा को नहीं जगायेगा? 'आपका राज केवल आज' वाक्य में 'राज' रहस्य के अर्थ को उजागर करेगा या किसी के एक दिन के शासन को? क्या यहाँ राज्य के लिये 'राज' और रहस्य के लिय 'राज़' का प्रयोग आवश्यक नहीं है। मान लो कोई कह रहा है कि-''क्या जीना इसी को कहते है'? इस वाक्य

Scanned by CamScanner

से 'जीना' (जीवनयापन करना) स्पष्ट होता है या 'सीढ़ी' का बिम्ब उभरता है? अपनी-अपनी समझ और भ्रामक संदर्भ को ग्रहण कर कोई 'जीना' का अर्थ सीढ़ी से लेगा, तो कोई जीने के प्रकार से। जबकि वाक्य यदि यों हो कि- 'क्या ज़ीना इसी को कहते है' तो हर व्यक्ति इस जीने का अर्थ सीढ़ी से ही लगायेगा।

कहने का अर्थ यह है कि नुक्ते की शब्द के सही स्थान पर प्रयुक्ति किसी भी प्रकार के अर्थ के संदेह से मुक्ति दिलाती है और उस शब्द के सही अर्थ तक ले जाती है। अतः नुक्ते के प्रयोग को व्यर्थ सिद्ध करने वालों के कुतर्क हर किसी को अशुद्ध अर्थ के अंधे नर्क में डालने के अतिरिक्त कोई अन्य समाधान प्रस्तुत नहीं करेंगे। इसलिये नुक्तेयुक्त शब्द नुक्ताविहीन होकर सही अर्थ के संदर्भ में बेमौत मरेंगे।

अगर केवल, ''ड' और 'ढ' पर ही आवश्यकतानुसार अधोबिन्दु विधान व परम्परा हिन्दी में मान्य है और अन्य किसी शब्द के नीचे बिन्दु लगाना हिन्दी के सम्मान के विरुद्ध है (सार्थ, गजल गरिमा-२, पृ.३१) तो 'सॉनेट' और 'डॉक्टर' शब्द पर आये अर्ध चन्द्राकार चिन्ह को ये हिन्दी गजलकार क्यों नहीं हटाते। 'शे'र' को 'शेर' की तरह क्यों नहीं लिखते? क्या इन प्रयोगों से हिन्दी के सम्मान में श्रीवृद्धि होती है क्योंकि हिन्दी ग़ज़ल के इन्ही नारदों का यह भी कहना है-' हिन्दी शब्द गजल तो हो सकता है, ग़ज़ल नहीं।... कुछ अधिक पढ़ों ने या अपनी विदेशी पहचान दिखाने के लिये 'डॉक्टर','जैट' को 'जॅट' जैसे अतिरिक्त चिन्ह लगाकर हिन्दी के गले में पत्थर बाँध दिये हैं। (डॉ. ओम प्रकाश 'अराज', गजल गरिमा-२, पृ.३०)

'तैयारी' को 'तयारी' 'गुंजायमान' को 'गुंजान', 'रूमाल' को 'रुमाल', 'छँट' को 'छट', 'बेहतर' को 'बहतर', 'सनकी हो जाते हैं' को 'सनकते', 'रास्ते' को 'रासते', 'हरेक' को 'हरिक', 'हेतु' को 'हेतू', 'आकाश' को 'आकास', 'खामोशी' को 'खमुशी', 'लहूलुहान' को 'लोहूलुहान' बनाकर हिन्दी गजल में प्रयोग कर देने-भर से यदि हिन्दी में चमक आ जाती है और आतंकवाद, अलगाववाद के राक्षसों को इस प्रकार के उत्पन्न हुए दैवीय गुणों से मारा जा सकता है या गजल में एक नया मुहावरा उभारा जा सकता है, कथित भाषायी भिन्नता को भुलाया जा सकता है या हिन्दी के मुट्ठीभर हिंदीगजल के विरोधी आलोचकों को इस नयी गजल का शिल्प आसानी से समझाया जा सकता है और इसे प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ाया जा सकता है तथा हिन्दीनुमा उर्दू लिपि क्या होती है, इसे समझाया जा सकता है तो मानना ही पड़ेगा कि भानुमित्र और उनके कुनबे का 'हाँ-हाँ' की रट लगाता गजलकार 'गजल गरिमा' की लालिमा को एक अनूठे प्रभामंडल में बाँधकर ही मानेगा। आलोचकों की व्यंग्य-बौछार से बचने के लिये नये तर्को ढालें को तानेगा।

अगर ऐसा नहीं है तो हिन्दी के इन नव गजलकारों को भाषा की दुर्गति को पुष्ट करने में कुछ तो लज्जा का अनुभव होना चाहिए। 'रीत' से 'प्रीति' की तुक 'प्रीत' के रूप में निभाते समय कुछ तो भयभीत होना चाहिए। 'लगे','उठे' की तुक 'दिखें', 'यामिनी' की तुक 'चाँदनी' अथवा 'मन' की तुक 'मन' फिर 'दामन', 'झिलमिलाती' की तुक 'बुलाती' और आगे 'खिलखिलाती', 'न्यारे' की तुक 'न्यारे' और 'प्यारे' की तुक 'प्यारे', 'चलना' की तुक 'कटना' आगे 'पलना'-'जलना'-'मिलना'-फिर 'मिलना','नादानी' की तुक 'निगरानी'-'पुरानी'-'नूरानी' के रूप में 'गजल गरिमा' में प्रकाशित गजलों में

Scanned by CamScanner

काफियों के अशुद्ध रूपों के बावजूद यदि इसकी सराहना इसप्रकार होती हैं कि-
'' हिन्दी गजल के प्रति आपकी (भानुमित्र) संचेतना और आपकी सक्रियता ने नये नगीने जड़ दिये हैं।'' (अतुल कनक) या 'आप नैष्ठिक संकल्प के साहित्य साधक हैं। गजल के पारख हैं, बहर में पारंगत हैं... हिन्दी गजल को आपसे बड़ी आशा है।'' (डॉ. किशोर काबरा) अथवा ''हम साहित्यकारों को निर्भीक और निडर विपक्ष की भूमिका का निर्वाह करने का समय आ गया है और मैं फक्र के साथ कह सकता हूँ कि 'गजल गरिमा' के माध्यम से आप ऐतिहासिक कार्य कर रहे हैं (डॉ.विनय मिश्र) तो समझ में आने लगता है कि अंधे रेबड़ी बाँट रहे हैं और घूम-फिर कर अपनों को ही दे रहे हैं। भानुमित्र के 'गजल गरिमा' नामक इत्र से ये इतने अभिभूत या आनंदित हैं कि इनके मुँह से हर उल्टी-सीधी बात पर केवल 'वाह' निकल रही है।

भानुमित्र को गजल का पारखी, बहर का पारंगत और नैष्ठिक संकल्प का साहित्य साधक बताने वालों में गजल के प्रति कितनी समझ है, आइये देखें-

डॉ. किशोर काबरा की 'गजल गरिमा' के प्रवेशांक के पृ.३ पर दो ग़ज़लें नहीं, 'गजलें' छपी हैं, पहली गजल का मतला इस प्रकार है-

उम्र-भर बिजलियों के सहारे रहे
मेरी आँखों के बादल कुँआरे रहे।

यहाँ 'बिजली' स्त्रीलिंग है और 'आँख का बादल' पुल्लिंग। बादल के बीच बिजली कौधती है तो उसके प्रकाश में बादल का समूचा जिस्म नहा उठता है। बादल और बिजली के ऐसे मिलन के बावजूद फिर भी कोई बादल कुँआरा रह जाता है तो मानना पड़ेगा, यह कथन मौलिक है और अर्थहीनता का शिकार होने के बावजूद हिन्दी गजल के माफिक है।

बादलों के योग नहीं, हवा के निम्न या उच्च दवाब के तूफान आते हैं, इस तथ्य को डॉ. ब्रह्मजीत गौतम झुठलाते हैं और बताते हैं-

बादलों का योग कुछ ऐसा बना है / फिर किसी तूफान की सम्भावना है।

(गजल गरिमा-प्रवेशांक, पृ.९)

'और' को तोड़-मरोड़ कर 'अर' बनाते हुए, 'हेतु' को 'हेतू' दिखाते हुए अर्थात् ग़ज़ल को गजल का पाजामा पहनाते हुए श्री राम दयाल मेहरा घर की चौखट को मचलने की क्रिया से जोड़ते हैं। जिस चौखट के न पाँव हैं न हाथ, न प्राण हैं न आँख, वे उसे सजीव करते हैं। अर्थ निकले न निकले लेकिन चौखट मचल कर बाहर आ जाती है। 'शायद इसी तरह 'हिन्दी गजल' कही जाती है-'घर की चौखट फिर मचली है/ वह शायद बाहर निकली है।'

(गजल गरिमा प्रवेशांक पृ.८)

सूर्य का प्रकाश आकाश से पृथ्वी तक की दूरी अपनी किरणों के माध्यम से सीधी रेखा में ही तय करता है। प्रकृति का यह विधान अपरिवर्तनीय है। किन्तु गजल के समझदार चितक श्री अनिरुद्ध सिन्हा को लगता है कि

(शेष पृष्ठ ९ पर.......)

दर्शन बेजार के सद्यः प्रकाशित तेवरी संग्रह-

ये ज़ंजीरें कब टूटेंगी

की आगामी १६ पृष्ठों पर क्रमशः प्रस्तुति

Scanned by CamScanner

३३

गुलमुहर, चमेली, बेला की सूखी टहनी,
अब हर दरवाजे स्वागत करती नागफनी।

जो चार बजे तो फूल तोड़ डाले जो भी,
काँटों की नई संस्कृति आज हुई अपनी।

हर पौधे पर चुपके-चुपके विष-बेल चढ़ी,
आरंभ हुई जहरीली हवा यहाँ बहनी।।

कुछ लोग अजनवी घूम रहे हैं बस्ती में,
हर नुक्कड़ पर आम हो गई आगजनी।।

दिन में भी बंद रहे सब खिड़की-दरवाजे,
दहशत ही दहशत, हुई व्यवस्था अब छलनी।।

बाहर से जो शांत हवेली दीख रही,
उसकी अंदर की दीवारें हैं रक्तसनी।।

'बेजार' करो तुम याद कि पिछले दंगों में
इस घर से ही शुरू हुई थी आगजनी।।

Scanned by CamScanner

ये जंजीरें कब टूटेंगी

३४

खड़ा हुआ है दूर क्षितिज पर सूरज नई रश्मियाँ धारे,
उठकर स्वागत करो सुबह का, धूप खिलेगी सबके द्वारे॥

काली रात अमावस वाली देख-देख भयभीत हुये थे,
दूर-दूर तक घिरे घनेरे, मिटने को है अब अँधियारे॥

थके-थके-से-डरे पखेरू दुबके रहे नीड़ में जो सब,
अब निकलेंगे चहक-चहक कर खुली हवा में पंख पसारे॥

भले पार मँझधार लक्ष्य है, भले आँधियों का अंदेशा,
सँभल चलो ले नाव भँवर में भले दूर हैं अभी किनारे।

तुम न बढ़े आगे तो कैसे हरियाली होगी ऊसर में,
फसल नहीं अब तक धरती पर भूख मिली है साँझ-सकारे॥

स्वप्न विवेकानन्द संत ने जो देखे अब होंगे पूरे,
उठो युवाओं तुम सब मिलकर नभ से लाओ तोड़ सितारे॥

कठिन भले हो, पर न असंभव भागीरथ के लिये कभी कुछ,
निकल पड़ा जो स्वयं अकेला उसके साथ जुड़े जन सारे॥

जितना हमसे बना, किया है, जो न कर सके सौंप रहे हैं
हमनें तो 'बेजार' लिखी है नई सदी अब नाम तुम्हारे।

Scanned by CamScanner

३५

ऊँचाई नापन को नभ की कुछ ऐसा कर डाला है
तबियत से इक पत्थर हमने अब हर बार उछाला है।।

पहले ही प्रयास में मित्रों ऐसा इक सूराख हुआ,
प्यासी धरती शीतल करने फूट पड़ा परनाला है।।

कल सागर की गहराई भी नाप तुम्हें बतला देंगे,
ज़ाकर बीच मगरमच्छों के हमने जलधि खँगाला है।।

हो कितना उद्दण्ड हिमालय राह न रोके गंगा की,
भागीरथ बन हमने कर में थामा बज्र-कुदाला है।।

गया चन्द्रमा-मंगल ग्रह तक अब इन्सां 'बेज़ार' भले,
भूख, गरीबी, बीमारी का लेकिन भू पर जाला है।।

Scanned by CamScanner

३६

तम हरने को दिन-भर जिसने निज तन दहन किया,
उस ढलते सूरज को ही बस हमने नमन किया।

उगते रवि को शीश झुकाने जो भी आए गंगा-तट,
उनसे बचकर ही रहने का हमने जतन किया।

बूढ़ा बरगद जो पंथी को देता आया छाँव,
उसकी हर सूखी डाली को हमने नमन किया।

चालबाज धावक की यारो ठोंक रहे सब पीठ,
हमने महज थके पाँवों का अध्ययन गहन किया।।

राजा की बग्घी के आगे नाच रहे सब लोग,
बुधिया की अरथी के पीछे हमने गमन किया।।

जो 'बेजार' बाँचते आए थे विरदावलियाँ
उनके हर ताने को हमने हँसते सहन किया।।

Scanned by CamScanner

३७

नाम था जिसके कभी वारंट जारी,
आज उसकी आरती सबने उतारी।

कर रहे हैं हर सभा को वो सुशोभित
कागजों में चल रही जिनकी फरारी।

सालभर तक पुलिस से बचते रहे जो,
नगर में उनकी निकलती है सवारी।

जेब में पहुँची 'सुनामी' की उगाही,
स्वयं सेवी संस्था के बन प्रभारी।

वे नहीं दर्शन कभी देते अकेले,
साथ चलते हैं कई बन्दूकधारी।

तीन सौ दो की दफा में लिप्त रहकर,
खूब की गंदी सियासत की सवारी।

देखकर 'बेजार' उनकी अब दबंगी,
मूक-दर्शक मात्र है जनता बिचारी।

Scanned by CamScanner

३८

आप तो देते रहे बस यातनाएँ,
और ये फरमान हम बस मुस्कराएँ।

और भी ताकत भरेगी हौसलों में,
दे भले ही आप कितनी यंत्रणाएँ।

एक हद तक ही हुआ करती इबादत,
और कितना सिर ये सजदे में झुकाएँ।

[illegible] के सँग अब चला जाता नहीं है,
दोस्ती आखिर कहाँ तक हम निभाएँ।

घाव देकर आप मरहम ढूँढते हैं,
जानते हैं आपकी संवेदनाएँ।

आपका हर जुल्म अब हद से परे है,
क्यों न अब 'बेज़ार' भी तेवर दिखाएँ।

Scanned by CamScanner

३९

हिन्द सागर में उठाओ इस तरह का ज्वार यारो,
मान ले सिक्का वतन का फिर यही संसार यारो।

हिन्द ने सच की लड़ाई में न मानी हार यारो
खींच लो अब म्यान से तुम तेग या तलवार यारो।

गर्जना गूँजे गगन में सिंहगढ़ के सिंह की फिर,
तुम शिवाजी की तरह ऐसे भरो हुंकार यारो।

जान देने में न पीछे हम रहेंगे इस वतन पर,
वाहे गुरू गोविन्दजी की फिर भरो ललकार यारो।

सौ करोड़ों की जवानी आज बन जाये भगत सिंह,
चल पड़ो चोला वसंती पहन अबकी बार यारो।

बुद्ध-नानक और गांधी की अहिंसा के मुकाबिल,
सर उठा पाये न कोई हाथ ले हथियार यारो।

खून बह जमता नहीं है युद्ध में रणबाँकुरों का,
हो न पाए सरहदों की आबरू 'बेजार' यारो।

Scanned by CamScanner

ये जंजीरें कब टूटेंगी

४०

धूमधाम से राजाजी की आज सवारी निकलेगी,
आते-जाते हुये सड़क पर जान हमारी निकलेगी।

रातों-रात हटा दी जायेंगी टटियाँ-झोपड़पट्टी,
साफ घरों से ही तो उठकर शोभा न्यारी निकलेगी।

नाम पट्टिका लगा यहाँ पर स्वागत द्वार सजाए हैं,
रजवाड़ों की नई संस्कृति सब पर भारी निकलेगी।

राजा-रानी घोड़े चढ़कर मन्द-मन्द मुस्काएँगे,
जनता उनके पीछे करती जय-जयकारी निकलेगी।

बड़े-बड़े कवि उछल-उछल कर विरदावलियाँ गायेंगे,
भाटों जैसी 'धूमिल' की छवि बारी-बारी निकलेगी।

माला पहनाने वालों में क्या कुछ भगदड़ कम होगी,
अखबारों में कल को उनकी फोटो प्यारी निकलेगी।

Scanned by CamScanner

४१

दौरे-खिजां में आग उगलती है चाँदनी
खाने लगी है आज चिरागों को रोशनी।

सैयाद ने है कैद किया बागवान को
लेकर खड़ा है आज वो शमशीर-आहनी।

फूलों के रंग स्याह गुलिस्ताने-वतन में
बुलबुल उदास शाख पै बैठी है अनमनी।

अम्नो-अमान की न दे और दुहाई
तेरी पता है उँगलियाँ सब खून में सनी।

'बेजार' लगा घूमने क़ातिल लिये खंज़र
कैसे बचे हरेक की अब जान पर बनी।

Scanned by CamScanner

४२

शुतुरमुर्गी भ्रम कि आँधी टल गयी
ज़िन्दगी जड़ से उखड़ पल-पल गयी।

शाख जिस पर बनाया आशियां
बिजलियां उस पर गिरीं वह जल गयी।

हम समझ पाये न यारों का मिजाज
दोस्ती ही कर हमें घायल गयी।

सुख भरी उम्मीद का दामन लिये
ज़िन्दगी की शाम बेबस ढल गयी।

हम लगे जब प्यार करने दर्द को
बात यह 'बेज़ार' मन को खल गयी।

Scanned by CamScanner

४३

वक़्त रुकने का नहीं है साथियो! चलते रहो
वक्ष पर अन्याय के तुम मूँग नित दलते रहो।

व्यर्थ ही भयभीत हैं हम जालिमों के जुल्म से
क्या जरूरी है कि यूँ ही हाथ को मलते रहो।

हर अंधेरे को उजाले में बदलने के लिये
दीप बनकर ज़िन्दगी-भर तेजतर जलते रहो।

भट्टियों में त्याग की हो चेतना इतनी प्रबल
तुम नुकीले क्रांति के हथियार-से ढलते रहो।

लोग तन-मन-धन लुटाकर रूप भारत का गढ़ें
राष्ट्र के हित तुम निरंतर मोम-से गलते रहो।

Scanned by CamScanner

४४

युग खड़ा हुआ है किरनों का स्वागत करने।
कवि आ जाओ सूरज बनकर अब तम हरने।

तुम उठो, जगाओ अलख यहाँ जन-जन में
हत् आत्मबोध से सभी लगे हैं भरने।

चल पड़ो हिमालय से लाने नवगंगा
फिर लगे लोग वसुधा पर प्यासे मरने।

केवल तब ही नवयुग की छवि निखरेगी
नववसंत जब भू पर लगे उतरने।

श्रम का ध्वज लेकर अब घर-घर फहराओ
'बेजार' लगे भारत का रूप सँवरने।

Scanned by CamScanner

ये जंजीरें कब टूटेंगी

४५

जब गुलामी के नशे ने एशिया भरमा दिया।
तब अकेले हिन्द ने यूरोप को थर्रा दिया।

लक्ष्मी बाई, मंगलपांडे ने अमर गाथा लिखी
जंग का परचम वतन में हर जगह लहरा दिया।

कैद थे रंगून में फिर भी बहादुर शाह ने
आखिरी दम तक फिरंगी नीति को धक्का दिया।

सर कफन बाँधे फिरे आजाद, बिस्मिल या भगत
तख्ते-लंदन पर उन्होंने कहर ही बरपा दिया।

जर्मनी, जापान, सिंगापुर से गरजे बोस थे
जालिमों के हर इरादे को तुरत दफना दिया।

साथ मिलकर चल पड़े हिन्दू-मुसलमां-सिख सभी
तब तिरंगे को सभी ने गगन में फहरा दिया।

दोस्तों रखना नजर फिर देश के टुकड़े न हों
रोशनी से हो न वंचित फिर कहीं अपना 'दिया'।

Scanned by CamScanner

४६

लौटकर भागे चले आओ इधर
तुम खड़े हो शेर की अब माद पर।

हम जिसे अब कह रहे इंसान हैं
खून से जबड़ा सना आता नजर।

रूप आदमखोर सबका अब हुआ
हर तरफ जुल्मों-सितम की है लहर।

कैदखाने में सभी खुशियाँ यहाँ
खौफ में डूबा हुआ सुख का नगर।

क्रान्ति की भाषा पढ़ेगा ये तभी
और भी 'बेज़ार' को बेज़ार कर।

Scanned by CamScanner

४७

सूली पै जब कभी यहाँ चढ़ता है मसीहा
अध्याय नये सत्य का गढ़ता है मसीहा।

हिल जाती हैं बुनियादें सभी जुल्मो-सितम की
मजमून बगावत का जो पढ़ता है मसीहा।

इतिहास के पन्नों पै सँवर जाती है स्याही
जब हाथ में खंजर लिये लड़ता है मसीहा।

हर राह के शोलों को हवा मिलती है आखिर
जिस राह में तूफां लिये बढ़ता है मसीहा।

झुक जाते हैं सिर लाख शहंशाहों के खुद ही
ज़िद पर कभी 'बेज़ार' जो अड़ता है मसीहा।

Scanned by CamScanner

ये जंजीरें कब टूटेंगी

४८

दिल का जुनून जब भी बगावत पै आयेगा
तय है कि इन्क़लाब फिजाओं में छायेगा।

हकदार है जीने की ये कुचली हुई नस्लें
आखिर कोई कब तक इन्हें ठोकर लगायेगा।

बन जायेंगे आतिश मेरे छेड़े हुये नग़मे
जुल्मों का जब कभी यहाँ तूफान आयेगा।

हम आग लगा देंगे उसी रोज़ जहां में
मजबूर जुबां को जो जमाना दबायेगा।

हम तोड़ ही डालेंगे शमशीरे-नादिरी
'बेजार' कोई जब यहाँ खंज़र उठायेगा।

Scanned by CamScanner

('मंच' स्तम्भ के पृष्ठ ८ का शेष............)

जिधर रोशनी कम पड़ रही है, उधर सूर्य कोई साजिश कर रहा है। वे अदृश्य कर्त्ता की ओर मुखाबित होते हैं और भर्ती के 'सचमुच ही' दो शब्दों के साथ उससे सूर्य-किरणों का 'जरा-सा' (यह भी भर्ती के दो शब्द) रुख बदलने को कहते हैं। सिन्हाजी पता नहीं कौन-सी बैज्ञानिक दुनिया में रहते हैं-

मैं कहता हूँ सचमुच ही इधर कुछ रोशनी कम है
उभरती सूर्य किरणों का जरा-सा रुख बदल देना।

(गजल गरिमा-२, पृ.८)

डॉ. माया सिंह 'भाव (विचार)' को शिल्प और छन्द को आत्मा बताकर 'हिन्दी गजल' को 'छन्दबद्ध विचार प्रधान' काव्य बतलाती हैं। गजल गरिमा-४, पृ.१३ पर उनका काव्य के संदर्भ में यह ज्ञान कितना महान है, इसका आभास तो उनके अपरोक्त बयान से ही मिल जाता है। अब पहचानें कि उनको गजल लिखना या कहना कितना आता है। 'गजल गरिमा' के तीसरे अंक के पृष्ठ-८ पर उनकी एक गजल प्रकाशित है। इस गजल के अन्तिम शे'र में उनका 'छन्दबद्ध विचार' ऐसी मानसिक बीमारी का शिकार है, जो अर्थ की सामर्थ्य को व्यर्थ साबित करता है। शे'र में बौद्धिकपन ऐसा कि 'छन्द को गजल की आत्मा मानकर' इसके भाव या विचार को परमात्मा को समझने के लिये छोड़ा जा सकता है। मनुष्य रूपी पाठक की समझ से परे, इस सौ फीसदी शुद्ध, सौ फीसदी खरे शे'र का अवलोकन करें-

इज्जत कि आबरू की क्या बात करें 'माया'
फैशन-सी चल रही है हर लाज तक गुजर में।

उपरोक्त उदाहरणों से जो बात छनकर बाहर आती है, वह है ग़ज़ल को गम्भीर अर्थों में नहीं, एक फैशन की तरह लिया जाना। कभी सिर घुटाना तो कभी सिर के बाल बढ़ाना, कभी मूँछ मुड़ाना तो कभी मूँछ रखाना और इस तरह चर्चा में बने रहना। सलवार, चोली, ब्लाउच की चटक को समझ लिया है लोगों ने गजल कहना। हिन्दी के गजलकार ग़ज़ल के मुँह पर कालिख पोत रहे हैं और इसे मेकअप बता रहे हैं। कोई (डॉ. सौम्या, गजल गरिमा-३, पृ.६) मतला में 'यामिनी' की तुक 'रूपसी' से मिलाकर आगे की तुकें 'चाँदनी','दामिनी','सनसनी', 'लेखनी' लाकर 'काफियों' को बीमार कर रहा है तो कोई (सुश्री वन्दना, गजल गरिमा-३,पृ.७) 'लगे','उठे' क्रिया के एकवचन रूप में 'दिखें','झरें' तुकें लाकर बहुवचन का रंग घोल रहा है तो कोई (आभा पूर्वे, गजल गरिमा-३, पृ. ९) संयुक्त रदीफ-काफियों में कही गयी गजल में 'याद' की 'फरियाद' से, 'बाद' की 'आबाद से ' निकृष्ट तुक भिड़ाकर बोल रहा है-'सही काफिये ढूँढो'।

भाँग पीकर गजल को कहने का ये स्वांग बाकई कमाल का है। गजल का आम कार्बेट में पका है या डाल का है, इसकी पहचान आजकल भानुमित्रजी ही करा सकते है सो करा रहे हैं और वे बता रहे हैं-'' जल तत्त्व की रासायनिक विच्छेदन क्रिया का सूत्र ध्यान में रखें... हिन्दी गजल की भाषा वह होगी, जिसमें अरबी-फारसी तत्समों को अलग कर दिया जाये और उसे देवनागरी में लिखा जाये।'' (गजल गरिमा प्रवेशांक, पृ.२५)

'उर्दू शब्द','उर्दू व्याकरणिक भाषा', 'उर्दूनुमा शे'र, 'ग़ज़ल का उर्दू फ्रेम', 'हिन्दीनुमा उर्दू लिपि' 'छन्दविहीन काव्य की भाषा और उसका गजल में प्रयोग', 'शब्द प्रधान काव्य' से भानुमित्रजी का आशय क्या है, यह तो वही जानें?

Scanned by CamScanner

आइये उनके द्वारा रचित उनकी कथित (ग़ज़लों नहीं) 'गजलों' के मर्म को छूएँ, उसे पहचानें। श्री भानुमित्र ने 'गजल गरिमा' जन-मार्च-१२ अंक-४ पृ. ३२ पर 'मेरी गजलें' शीर्षक से चार गजलें प्रकाशित की हैं। उनकी पहली गजल संयुक्त रदीफ काफियों में इस प्रकार है-

नागरी में है गजल ये नागरी में सोचिए
आत्मा में वर्णमाला की कहीं तो झाँकिए।
प्रेम-पथ के तीर्थ पर होता है सब का मिलन
अर्थ-सागर में उतर कर शब्द को पहिचानिए।
सूर्य भी देता नहीं अपनी किरन टेढ़ी कभी
सोच जो पहुँचाना है तो भाषा सीधी दीजिए।
कैसे वे संकेत समझें सीधे-सादे लोग हैं
शब्द अपने, बोली अपनी, भाषा अपनी बोलिए।
सृष्टि को संतान देकर जो थी जननी माँ हुई
मान पहले दीजिए फिर मान खुद भी पाइए।

अर्थहीनता, लयभंगता और मात्रा-दोष की शिकार उपरोक्त गजल का अवलोकन करें तो नागरी में कही गयी इस गजल में भानुमित्रजी ने नागरी में सोचते हुए, इसकी वर्णमाला की आत्मा में झाँकते हुए, अर्थ के सागर में उतर कर शब्दों को पहचानते हुए, अपने शब्द-अपनी बोली-अपनी भाषा में बोलते हुए, टेढ़ी भाषा को सीधी करते हुए, सिर्फ इतना ही बतलाया है कि 'जननी' और 'माँ' में शायद कोई अन्तर होता है। इसके साथ-साथ उन्होंने यह भी समझाया है कि सीधे-सादे लोगों तक संकेतों में सोच को पहुँचाने के लिए भाषा को सीधा करना पड़ता है। अर्थ के सागर में उतरकर (अर्थ को नहीं) शब्द को पहचानना पड़ता है। तब कहीं मानना पड़ता है कि ये 'ग़ज़ल' नहीं 'गजल' है, जिसमें 'पहचानिए' की तुक 'जानिए' लाकर काफियों को सिसकने को मजबूर कर दिया जाना भी एक प्रकार की खूबसूरती लाना है।

गजल संख्या-४ की अधिकांश तुकें 'ई' स्वर के आधार पर बदलाव का संकेत अवश्य देती हैं लेकिन तुकें 'मुखी' और 'दुखी' (दुःखी नहीं) के बीच काफिए कीच बनकर दुर्गन्ध छोड़ते हैं। इस ग़जल में जहाँ तक रदीफ का सवाल है इसका पता तो श्री भानुमित्र ही लगा सकते हैं। ये हिन्दी गजल है, हम क्या बता सकते हैं?

भानुमित्रजी की द्वितीय गजल पढ़ते-पढ़ते भी माथा ठनकता है कि इसका सही रदीफ 'आज है फिर कल कहाँ' है अथवा- 'आज हैं फिर कल कहाँ' के रूप में माना जाना चाहिए। 'ये खुशी है दो घड़ी की आज है फिर कल कहाँ/ रंग हैं इन्दधनुषी आज हैं फिर कल कहाँ' इसी गजल के अलग-अलग दो मिसरे हैं। इन दो मिसरों में रदीफ का परस्पर विरोधी रूप अगर सही है तो यह मानने पर विवश करेगा ही कि-''हिन्दी गजल का दाना-पानी अरबी-फारसी से नहीं आता है (डॉ. किशोर काबरा, गजल गरिमा-जन-मार्च-१२,पृ.२४)। इसी ग़जल के तीसरे शे'र में 'और' का रूप 'अर' तथा 'हिम जैसी महकती साँस' का अलौकिक स्वरूप अनूठे उपमा अलंकार की फाँस बन जाता है।

फूल से बातें करें अर गन्ध से सीना भरें
ये महकती साँस हिम-सी आज है फिर कल कहाँ।

इस गजल के पाँचवे शे'र (आँख में ऐसी मिचोली आज है फिर कल

Scanned by CamScanner

कहाँ) में 'आँख' में मिचौली' का प्रयोग मुहावरे' आँख मिचौली' के अर्थ पर इतना भारी पड़ता है कि मुहावरे और इसके अर्थ को ही ले डूबता है।

भानुमित्रजी की तीसरी ग़ज़ल के प्रथम शे'र पर आते हैं। आइये इसकी रेत की नदी में डुबकी लगाते हैं। शे'र है-

कोई पुस्तक खुली नहीं होती/ रेत पर ही नदी नहीं होती।

'कोई' कहकर अज्ञानता को प्रकट करता यह शे'र 'रेत पर नदी के के साथ 'ही' के निरर्थक प्रयोग से अर्थ की लय में एक रोग उत्पन्न करता है। 'रेत पर ही नदी नहीं होती' से क्या यह अर्थ लगाया जाये कि रेत को छोड़कर हर स्थान पर नदी होती है या ये माना जाये कि रेत पर नदी नहीं होती। रेत पर नदी की पुस्तक पढ़ने का यह उतावलापन, 'कोई' शब्द के प्रयोग के साथ अर्थ के नये द्वार खोलता है, या किसी गूँगे की भाषा बोलता है? गजलकार जिस पुस्तक को रेत में टटोलता है, उस पुस्तक का हर शब्द भ्रम में डालता है। यह पाठक पर निर्भर है कि इन दो पंक्तियों का अर्थ क्या निकालता है?

'याद को बस कुरेदते रहिए, याद जब तक सुरी नहीं होती' में 'सुरी' शब्द छुरी अधिक दिखायी देता है जो राख के बीच किसी प्रेम की चिंगारी को कुरेदता-सा महसूस होता है। कल्पना के अलाव पर तापते हुए शे'र में एक निरर्थक शब्द डालकर 'परी' की तुक 'सुरी' से जरुर मिल जाती है, लेकिन इसमें 'री' की दो बार आवृत्ति काफिये के स्वर के आधार पर बदलाव में घाव पैदा करती है।

गजल के तीसरे शेर (उस उदासी का क्या करे कोई, जो भली या बुरी नहीं होती) में जब ऋणात्मकता के रूप में 'उदासी' मौजूद है तो ये भली कैसे हो सकती है? क्या कोई भाव एक ही संदर्भ में सुख और दुःख का पर्याय बन सकता है। यदि इसमें तटस्थता है तो इस तरह का भाव रस नहीं रसाभास को उत्पन्न करेगा।

गजल संख्या-४ के तीसरे शे'र-(तोड़ते हो क्यों खिलौने जिद्दी बच्चे की तरह, कोशिशें तुम लाख कर लो मैं न होऊँगा दुखी) एक चर्चित शायर की ग़ज़ल की नकल से पैदा किया गया है। फिर भी इसमें यदि गजलकार टूटते खिलौनों पर दुःखी होना ही नहीं चाहता है तो 'क्यों' के रूप में विरोध क्यों जताता है? इसी ग़ज़ल के चौथे शे'र में 'मरुधरा के सिन्धु' की बात कही गयी है। क्या यह प्रयोग के लिये एक कोरा प्रयोग नहीं? क्या इसमें सही शब्दों के न चुन पाने का रोग नहीं?

भानुमित्रजी कहते हैं कि ''लोकतंत्र के पुनर्निर्माण एवं चारित्रिक मूल्यों की वापसी के लिये हिन्दी गजल में लोकतांत्रिक रँग भरना होगा।'' वे अपनी गजल के माध्यम से लोकतंत्र की रक्षा कैसे कर रहे हैं। बानगी के तौर पर लेख के अंत में उनका एक शे'र प्रस्तुत है-

'धूप खिलाना है जरूरी बारिशों के छोर पर,
केश-राशी जब खुले तो हाथ में हो कांगसी।

-रमेशराज

रमेशराज की सद्यः प्रकाशित कृति लम्बी तेवरी (तेवर शतक)

दे लंका में आग

Scanned by CamScanner

अन्तर्मन का दर्पण है-

तोड़ पत्थरों को भागीरथ

आचार्य राकेश बाबू ''ताबिश''

शब्द ब्रह्मोपासक सुकवि श्री दर्शन 'बेज़ार' की काव्य कृति-'तोड़ पत्थरों को भागीरथ', आवरण के अतिरिक्त ८८ पृष्ठीय, डिमाई आकार, साधारण कलेवर की कृति है। आवरण के अवसर के भाग में सर्वप्रथम 'प्रार्थना' शीर्षक में भारत की प्राचीन उत्कृष्टतम् संस्कृति का उल्लेख करते हुए देश में रामराज्य के पुनः स्थापनार्थ प्रार्थना की गयी है। प्राथमिक से लेकर इंजीनियरिंग तक की शिक्षा में रहे आद्योपान्त शिक्षकों को कृति का समर्पण और अगले पृष्ठ पर अपने परमपूज्य माता-पिता का चित्र और चित्र के नीचे काव्याभिव्यक्ति में उनके आशीर्वाद के साथ उनकी गोद में पुनर्जन्म की अभीष्ठ आकांक्षा करना यह सिद्ध करता है कि कवि भारतीय संस्कृति, शिष्टाचार और श्रद्धा में उत्कृष्ठ आदर्श का अनुसरण करता है। 'प्रणाम' में स्वाधीनता के उषाकाल में कवि का जन्म लेना, अन्तस मन पर स्वतन्त्रता नायकों का छत्रप पहनना एवं अपने प्रारम्भिक काल से ही काव्यांकुरण होना, अपने विशिष्ट प्रेरणा-स्त्रोत हिन्दी संस्कृति के प्राकट्य किया है वो वन्दनीय है। इसके अतिरिक्त अन्य उत्साहवर्द्धक एवं सहपाठियों का स्मरण करना उल्लेखनीय है।

पुस्तक में सम्मिलित रचनाओं को चार सोपानों में विभक्त किया गया है-कविताएं, मुक्तक, बाल कविताएं एवं ग़ज़लें। कविता सोपान में २९ रचनाएं हैं, जो देश और समाज का न मात्र दर्द स्पष्ट करती है अपितु कवि हृदय में विराजमान राष्ट्रभक्ति को प्रकट करती हैं। काव्य के चारों सोपानों में काव्य के शैशवकाल की भी रचनाएं हैं परन्तु रचनाओं के शैशव में भी यौवन की झलक परिलक्षित होती है। काव्य में भाव अभिव्यन्जना है। ग्राम्य जीवन हो या राष्ट्र चिन्तन, राष्ट्र और समाज की बढ़ती समस्याएं, निर्माण पथ पर आगे बढ़ने का संकल्प, भ्रष्टाचार का बढ़ता चलन, कवि की लेखनी ने सबको स्पर्श किया है। अगले सोपान में मुक्तक प्रस्तुत किए गये हैं, जिनकी संख्या २२ है। मुक्तकों में मानवीय संवेदनाओं को उकेरा गया है जो मनुष्य के अन्तस् मन में उत्साहवर्धन कर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। तीसरे सोपान में बाल कविताओं को सम्मिलित किया गया है जिसमें मात्र ६ कविताएं हैं, जहां बाल मन को आह्लादित करने के साथ संस्कारित करने वाले साहित्य का सृजन बहुत कम हो रहा है, वहीं श्री 'बेज़ार' ने बाल साहित्य पर भी बड़ी कुशलता से अपनी लेखनी को चलाया है। रचनाओं की संख्या कम अवश्य है, परन्तु प्रभावी एवं तथ्यपरक है। बाल सुलभ सुकोमल मन की कोमल भावनाओं का दृश्य इन कविताओं में परिलक्षित या दृष्टिगोचर होता है। अगला सोपान ग़ज़लों का है जिसमें २८ ग़ज़लें सम्मिलित की गयी हैं। ग़ज़लें दिल का दर्द तो उभारती ही हैं, मानव जीवन की विकृतियों एवं देश और समाज का भी चित्र खींचती हैं।

उद्धरणों की प्रति छाया में पुस्तकीय वैशिष्ट्य को विचारों की कसौटी पर कस कर देखते हैं। कवि ईश्वर की सर्वव्यापकता को स्वीकार करता है एवं उसी के प्रकाश में आपसी साम्प्रदायिक सौहार्द्र स्थापित करने का प्रयास करता

Scanned by CamScanner

है। पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

कण-कण में भगवान यहां है, राम यहाँ रहमान यहाँ है।
यह धरती पावन मन भावन, गीता-ग्रन्थ कुरान यहाँ है।।

देश स्वाधीन हुआ किन्तु साथ ही विभाजन का वज्राघात भी झेलना पड़ा। कवि के हृदय में राष्ट्र विखण्डन की वेदना शब्द श्रोणित बनकर लेखनी स्वरूप चक्षुओं से प्रस्फुटित होने लगती हैं जो निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है-

धरती वो थी एक हमारी, उसमें से दो देश बने।
अपने ये लाहौर करांची, आज वही परदेश बने।।

देश के विभाजन के उपरान्त देश में सिर उठाता अलगाववाद, पुनर्विभाजन और पराधीनता को निमन्त्रण देती कुछ देशद्रोही शक्तियों की प्रदूषित मानसिकता कवि को स्वीकार नहीं है, इसीलिए वह शब्द-संकल्प करता है-

तिनके-तिनके बना नीड़ जो, उसे न अब जलने देंगे।
स्वतन्त्रता के सूरज को अब, कभी नहीं ढलने देंगे।

इसी व्यथा से उद्वेलित कवि आत्मबलिदान के लिए प्रेरित करते हुए निम्न पंक्तियां कहता है-

भर दो रणचण्डी का खप्पर, भर दो बलिवेदी की झोली।
चलो झेलने भारत वासी, हंस-हंस कर सीने पर गोली।।

कवि का आदर्श भावोद्रेग मिथ्या आदर्शों, बनावटीपन और आडम्बर को धिक्कारते हुए कहता है-

बहुत हो चुका है बस कोरे आदर्शों का ढोल बजाना।
समय नहीं है सिर्फ पुरानी घिसी-पिटी बातें दोहराना।।

देश और समाज की स्थिति अति दयनीय है यहां वास्तविकता का ज्ञान हो पाना बहुत ही दुष्कर है, पग-पग पर धोखा है। कुछ भी विश्वास के योग्य शेष नहीं है, यहां रक्षक भी भक्षक हो सकता है, सम्पूर्ण देश में छल-प्रपन्च का जाल बिछा हुआ है। इसी भावना को प्रकट करती पंक्तियां हैं-'जाल फैलाकर शिकारी छुप गये हैं घात में/जागते रहना सिपाही तुम अंधेरी रात में।

मातृभूमि भारत सम्पूर्ण पृथ्वी पर प्रकृति सुषमा का अनुपम वरदान है, गांव उसी की श्रेष्ठतम इकाई है। प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण ग्राम्य जीवन के परिवेश का एक सुन्दर चित्रण दृष्टव्य है-

सौंधी सौंधी गन्ध यहाँ है/
बहती मन्द समीर यहाँ है।
सुरभित वसुधा और कहाँ है?
चहके नित मृदु स्वर में खंजन
कितना सरल गाँव का जीवन।

समाज में मान्यताओं का क्षरण हो रहा है, आपसी प्रेम और सद्भाव मिट गया है। उसका स्थान कपटपूर्ण प्रेम ने ले लिया है। बाहरी दिखावे का चलन हो गया है। जिस पर विश्वास करो वही अविश्वसनीय निकलता है और समस्या बन जाता है-

लगते होली दीवाली तक, मातम के त्यौहार सखी री।
कौन दवाई देगा जब हो, खुद हकीम बीमार सखी री।।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता पूर्णतः विलुप्त है, आधुनिकता की होड़ लगी है। पश्चिमी सभ्यता ने भारतीय सभ्यता को पूर्ण रूप से अच्छादित कर

Scanned by CamScanner

लिया है, जिससे भारतीय संस्कृति पूर्ण रूप से घायल एवं आहत है-

पश्चिम की आंधी से घायल/पूरब के आचार सखी री।

कवि अपनी बात बेवाकी से कहने में सिद्धहस्त है, उसका विचार है कि जिस व्यक्ति के हृदय में मातृभूमि के प्रति एक भीषण ज्वार नहीं है, वह कोई मृतशरीर ही हो सकता है, जीवित नहीं-

बेरुखी हम किसी की न सह पायेंगे,
साफ कहने से हम तो न रह पायेंगे।
जिसमें जज्बा न हो मुल्क के वास्ते,
उसको जिन्दा कभी हम न कह पायेंगे।

जो लोग जीवन के संकट रूपी झंझावेगों से निकलते हुए जीवन यात्रा को लक्ष्य तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त करते हैं, उन्हें कभी मृत्यु भयभीत नहीं कर सकती। ग़ज़ल के इस शे'र से यही स्पष्ट होता है-

मर-मर के जिये हैं हम हर लम्हा ज़िन्दगी में
क्या खौफ हमें होगा जिस रोज़ कयामत हो।

उद्धरणों पर अधिक न जाते हुए काव्य के अन्य वैशिष्ट्यों पर ध्यानाकर्षण आवश्यक है। काव्य की भाषा पर विचार करें तो भाषा सरल सरस व प्रभावपूर्ण है। आम बोलचाल की भाषा है। भाषा में किसी प्रकार की पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं किया गया, जो साहित्यकार की सकारात्मक सोच का परिणाम है। भाषा में ग्रामत्व जैसी दुर्बलता भी नहीं है। सरल हिन्दी की सुन्दर शब्दावली के साथ साथ रहमान, दीन, मजहब जैसे सैकड़ों अरबी-फारसी के शब्द एवं सिफ्ट, वेलेण्टाइन, मॉल, हीटर, स्टैण्डर्ड जैसे आंग्ल भाषा के शब्द बड़ी सुन्दरता एवं कुशलता के साथ प्रयोग किए गये हैं, जिनसे हिन्दी भाषा को समृद्धता प्राप्त हुई है। इसी के साथ कवि ने काव्य सौन्दर्य की वृद्धि के लिए यत्र-तत्र अलंकारों का उपयोग किया है। अनुप्रास के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

शस्य श्यामला सुरभित वसुधा हर आंगन नन्दन का है।
कंचन कोठी कार कामिनी, नित्य बढ़ाते रार-सखी री।
सत्ता सम्पत्ति स्वार्थ सिद्ध सिद्धान्त सदैव सुहाये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुकवि श्री दर्शन 'बेजार' की यह कृति कवि के अन्तर्मन का दर्पण है जो अद्वितीय वैशिष्ट्यों से सम्पन्न साहित्य जगत के लिए अमूल्य धरोहर है।

(द्वारिकापुरी, कोटला रोड, मण्डी समिति के सामने, फिरोजाबाद. उ0प्र0)

तेवरी साहित्य इण्टरनेट पर

ब्लॉग:

Hinditewarisahitya.blogspot.com

फेसबुक:

Http://www.Facebook.com/Rameshraj.Tewarikar

वर्डप्रेस

Http://Hinditewarii.wordpress.com

Scanned by CamScanner

(कविता)

जीवन-चक्र

-क्षेत्रपाल शर्मा

तन से मुक्ति चाहने वाले,
मन को ये बंधन न मिलेगा।
धरती को सावन न मिलेगा।
फूलों को उपवन न मिलेगा।।
मर्यादा के बंधन ही तो,
धागों से रस्सी बन जाएँ।
बंधन ही जीना-मरना जो,
अनहोनी से मुक्ति दिलाएँ।
बिना बंधे गाड़ी न चलेगी,
नयनों को अंजन न मिलेगा।
तलवों को कांटे न मिलेंगे,
माथे को चंदन न मिलेगा।।
पल से पल का आकर्षण जड़,
चेतन की उमर बढ़ाए
बंधन के कारण ही स्वर है,
जो भावों में प्राण जगाए।
फूलों को बंधन न अगर हो,
डाली तो सूनी रह जाए,
तट का बंधन ही न रहे तो,
नदिया को सागर न मिलेगा।।
चाहत का धन ही है जो
हाथों को भी काम दिलाए,
बंधन मिट्टी की खुशबू है,
बे-बंधन सूनी रह जाए।
जीवन को बाधा न मिलेगी,
पुरखों को तर्पण न मिलेगा,
गुड़िया को पायल न मिलेगी,
घुटनों को आंगन न मिलेगा।
तन से मुक्ति चाहने वाले
मन को ये बंधन न मिलेगा।

-शांतिपुरम, सासनी गेट अलीगढ़
मो.- 9045789322

दो तेवरियाँ

विनय सागर

जो ढल रहे हैं नये वक़्त के ढलानों में
उन्हीं के रंग उभरते हैं आसमानों में।
जला हैं जिनका लहू तेरे कारखानों में
कभी तो झांक ले उन बेज़ुबाँ मकानों में।
बदल गई हैं हुकूमत यहाँ कई लेकिन
ग़रीब और उलझते गये बहानो में ।
वो लोग जिस्म को कुछ और नोच लेते हैं
जो बैठ जाते हैं सरकार की दुकानो में।
उन्हीं के हक में होते हैं फैसले अब तो
उछाल देते हैं टुकड़े जो हुक्मरानों में ।
हरेक बात ही बाहर निकल के जाती है
छिपा जरूर है कोई तो राज़दानों में ।
बज़ीर इनका है बादशाह इन्हीं का है
यही कमाल है सदियों से कुछ घरानों में ।
संभाले रखते हैं किरदार की जो अज़्मत को
उन्हीं की कद्र बस होती है कद्रदानों में।

-864शाहबाद गोदनी चौक, बरेली

(2)

शिवशंकर यजुर्वेदी

लिखना है तो इस नगरी की करुण कहानी लिख
कहाँ उजाला, कहाँ अंधेरा साफ बयानी लिख।
अस्पताल, पानी, बिजली के मिले वचन लेकिन
वचन निभाने आए कितने राजा-रानी लिख ।
महंगाई की मार से रमुआ अब की होली में
दिला न पाया है बिटिया को चूनरधानी लिख ।
अतिक्रमण ने पगडंडी में बदला सड़कों को
आज मास्टर प्लान हो गया है बेमानी लिख।
बना दिया टूटी सड़कों ने राधा को विधवा
दुनिया से उठ गया किशन का दाना-पानी लिख।
हर विपदा का हल बन्दी है उनके लॉकर में
आटा, दाल, दवाई, कम्बल मच्छरदानी लिख।
जाग चुकी है आज 'यजुर्वेदी' सारी जनता
नहीं चलेगी और किसी की अब मनमानी लिख।

-सं.-गीतप्रिया, 517 कटरा चांदखां, बरेली

Scanned by CamScanner

सरकार पंजीकरण संख्या-51714/87

शोधार्थियों के लिये एक महत्वपूर्ण पुस्तक

विचार और रस

(रस-निष्पत्ति का वैचारिक विवेचन)

लेखक-रमेशराज

राष्ट्रीय बाल कविताएँ

कवि-रमेशराज

प्राप्ति स्थल-बजरंग प्रकाशन, सागरपुर, दिल्ली

रस-परम्परा में एक नये रस की खोज

विरोध-रस

लेखक- रमेशंराज

सार्थक-सृजन, १५-१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ़

महत्वपूर्ण तेवरी संग्रह

(1) अभी जुबां कटी नहीं	संपादक- रमेशराज
(2) कबीर ज़िन्दा है	संपादक- रमेशराज
(3) इतिहास घायल है	संपादक- रमेशराज
(4) एक प्रहार: लगातार	तेवरीकार-दर्शन बेज़ार
(5) देश खण्डित हो न जाए	तेवरीकार- दर्शन बेज़ार

सार्थक-सृजन, १५-१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ़

डाक पंजीकरण संख्या-ए.एल.जी. /67/08/2010

प्रतिष्ठार्थ-

डॉ. उमेश श्री वास्तव
755/झा कॉलोनी, पंतनगर
जि.-ऊधमसिंह नगर- 263145

संपादक/ प्रकाशक/ मुद्रक रमेशराज द्वारा सार्थक सृजन प्रकाशन कार्यालय-15-109, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ़ के लिये शारदा प्रटिंग प्रैस हेतु आशू प्रिंटिंग प्रैस, अचल तालाब, अलीगढ़ से मुद्रित।

Scanned by CamScanner